ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-1* February- 2021
Innovation The Research Concept

जैन आगम में अर्थोपार्जन के स्रोत

Sources of Earning in Jain Aagam

Paper Submission: 11/02/2021, Date of Acceptance: 23/02/2021, Date of Publication: 24/02/2021

दिनेश कुमार मिश्र
सह आचार्य,
जैनोलोजी विभाग,
राजकीय बांगड़ स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, पाली, भारत

सारांश

मानव जीवन में अर्थ का अप्रतिम महत्त्व है। वर्तमान समय में मानवीय अपेक्षाएं अत्यधिक बढ़ जाने से अर्थोपार्जन बेहद जरुरी हो गया है। ऐसे में अर्थोपार्जन के स्रोत होना नितांत आवश्यक है। जैनागम में इसका चिंतन . मनन किया गया है। षट्कर्मों की शिक्षा :- शिल्पकला, शिलपसेवा, असिकर्म, लिपिकर्म, कृषिकर्म और वाणिज्य व्यापार का उल्लेख एक समाधान है। आगम में महिला, पुरुष को चौसठ और बहत्तर कलाओं के सीखने की चर्चा है। वर्तमान संदर्भ में इनकी प्रासंगिता अत्यधिक है।

Earth has infinite importance in human life. In the present time, due to increased human expectations, earning is very important.In such a situation, it is absolutely necessary to have a source of earning.It is contemplated in Jain Aagam. Education of 'satkarmas', crafts arts, crafts service, clerical work, agricultural work and commerce is a solution. In Aagam, there is a discussion of learning the arts ofmen,women sixty-four and seventy-two.In the present context, their relevance is excessive.

मुख्य शब्दः अर्थोपार्जन स्रोत, जैनागम, आगम चिंतन, मनन, आगम ज्ञान, षट्कर्मों की शिक्षा, कला, कौशल।

Keywords: Earning sources, Jain Agam Chintan, Manan, Agam Gyan, education of 'Sattkarmas' Kala- Kaushal.

प्रस्तावना

प्रत्येक मनुष्य को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों को प्राप्त करना अभीष्ट है। सामान्यतः धर्म से मोक्ष एवं अर्थ से काम की प्राप्ति की बात कही जाती है, किन्तु 'कौटिल्य' ने धर्म और काम का मूल अर्थ को बताया है।[1,] नीतिवाक्यामृतम्' के रचनाकार सोमदेव का यही अभिमत है, "अर्थ के बिना धर्म और काम की प्राप्ति सम्भव नहीं है, इसलिए मनुष्य को अर्थोपार्जन करना ही श्रेष्ठ है।[2] जो मनुष्य काम व अर्थ की उपेक्षा करके धर्म की ही सतत् उपासना करता है, वह पकी हुई खेती को छोड़कर ऊषर भूमि को ही जोतता है।"[3]'सोमदेव' अर्थ से मनुष्य के सब प्रयोजन की सिद्धि हो जाने की बात कहते हैं।[4] 'पउमचरियं' के अनुसार जिसके पास धन है, वही सुखी, पंडित, यशस्वी व महान् है। धर्म भी उसी पुरुष के अधीन होता है।[5]'कुवलयमाला' में भी धन के बिना धर्म और काम नहीं होने की बात कही गई है।[6]वैदिक ग्रन्थ रामायण[7] एवं महाभारत[8] में भी अर्थ को धर्म का मूल बताया गया है। स्मृतियाँ भी धन के महत्त्व को स्वीकार करती हैं।[9] इससे निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य जीवन में अर्थ का अप्रतिम महत्त्व है। किन्तु धर्म के व्याख्याकारों ने इस अर्थ के साथ मूर्च्छा भाव जुड़ने को परिग्रह कहा है और इस परिग्रह की सर्वत्र निन्दा की गयी है, चाहे जैन धर्म का आगम साहित्य हो या वैदिक धर्म की 'गीता' या 'श्रीमद्भागवत'। आगमिक अर्थोपर्जन के स्त्रोत निम्न बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किये गए हैं :–

अध्ययन के उद्देश्य

जैन आगमिक अर्थोपार्जन के स्रोतों की विवेचना और समसामयिक जीवन में इसकी प्रासंगिकता।

Objective of the Study

Explaining the source of Earning in Jain Agamas, and its relevance in contemporary Life.

अर्थोपार्जन के साधन (उत्पादन के साधन)

आधुनिक अर्थशास्त्री 'एल्फर्ड मार्शल' ने धनोपार्जन के साधनों का वर्गीकरण भूमि, श्रम, पूँजी और प्रबन्ध के रूप में किया है[10] जैन ग्रन्थों में अर्थोपार्जन के साधनों को छः वर्गों में विभक्त किया गया है[11]– 1. असि – सैनिक

वृत्ति, 2. मसि – लिपिक वृत्ति, 3. कृषि – खेती का कार्य, 4. विद्या – अध्यापन या शास्त्रोपदेश, 5. वाणिज्य – व्यापार, व्यवसाय, 6. शिल्प – कला कौशल।

'प्रश्न व्याकरण सूत्र' में धनार्जन के लिए गृहस्थ द्वारा उक्त षट्कर्मों को सीखने की बात कुछ भिन्नता से कही गई है। यथा – 1. शिल्पकला, 2. शिल्पसेवा, 3. असि कर्म–तलवार आदि शस्त्रों को चलाने का अभ्यास, 4. लिपि आदि लिखने की शिक्षा, 5. कृषिकर्म (खेती करने का कार्य) एवं 6. वणिज्य–व्यापार।[12]

शिल्प कला

उल्लेख के अनुसार प्राचीन काल में शिल्प के अंतर्गत सैकड़ों शिल्प की शिक्षा ली जाती थी।[13] बहुत से लोग अपने कर्मों में दक्षता हासिल करने के लिए लेखन आदि से लेकर पक्षियों की बोली तक के शब्द ज्ञान करने के लिए गणित प्रधान बहत्तर कलाएँ सीखते थे। उस समय महिलाएँ चौसठ कलाओं की शिक्षा ग्रहण करती थी।[14] अन्य आगमों में इन कलाओं के नाम बताए गए हैं[15]– 1. लेखनकला, 2. गणितकला, 3. रूपकला, 4. नाट्यकला, 5. गीतकला, 6. वाद्यकला, 7. स्वरगतकला, 8. पुष्करगतकला, 9. समतालकला, 10. द्यूतकला, 11. जनवादकला, 12. पौरस्कृत्यकला, 13. अष्टापदकला, 14. दकमृत्तिकाकला, 15. अन्नविधिकला, 16. पानविधि,17. वस्त्रविधि, 18. शयनविधि, 19. आर्यावधि, 20. प्रहेलिकाविधि, 21. मागधिकाकला, 22. गाथाकला, 23. श्लोककला, 24. गंधयुक्ति, 25. मधुसिक्थ 26. आभरणविधि, 27. तरुणिप्रतिकर्म, 28. स्त्रीलक्षण 29. पुरुषलक्षण, 30. हयलक्षण, 31. गजलक्षण, 32. गोणलक्षण, 33. कुक्कुटलक्षण, 34. मेढ़लक्षण, 35. चक्रलक्षण, 36. दंडलक्षण, 37. छत्रलक्षण, 38. असिलक्षण, 39.मणिलक्षण, 40. काकणीलक्षण, 41. चर्मलक्षण, 42. चन्द्रचर्या, 43. सूर्यचर्या, 44. राहुचर्या, 45. ग्रहचर्या, 46. सौभाग्यकर, 47. दौर्भाग्यकर, 48. विद्यागत, 49. मंत्रगत, 50. रहस्यगत, 51. सभास, 52. चारकला, 53. प्रतिचारकला, 54. व्यूहकला, 55. प्रतिव्यूह, 56. स्कन्धावारमाण, 57. नगरमाण, 58. वास्तुमाण, 59. स्कन्धावरनिवेश, 60. वस्तुनिवेश, 61. नगरनिवेश, 62. इष्वस्त्रकला, 63. छरुप्रवादकला, 64. अश्वशिक्षा, 65. हस्तिशिक्षा, 66. धनुर्वेद, 67. हिरण्यपाक, सुवर्णपाक, मणिपाक, धातुपाक की कला 68. बाहुयुद्ध, दण्डयुद्ध, मुष्टियुद्ध, दृष्टियुद्ध, नियुद्ध एवं युद्धातियुद्ध कला, 69. सूत्र बनाने की कला, नली बनाने. की कला, चमड़ा बनाने की कला, नाना प्रकार के खेलों की कला, 70. पत्र छेदन, वृक्षांग विशेष छेदने की कला, 71. संजीवनीविद्या – सजीवन–निर्जीवन 72. पक्षियों की बोली पहचानना।

शिल्प सेवा

धनार्जन के लिए विविध प्रकार के हुन्नर तथा सेवा का कार्य किया जाता था।[16] 'आदिपुराण' में हस्तकौशल को शिल्पकर्म कहा गया है।[17] हस्तकौशल के अन्तर्गत बढ़ई, लोहार, कुम्हार, चमार, सोनार आदि की उपयोगी कलाओं के साथ–साथ चित्र खींचना, फूल–पत्ते काढ़ना आदि कार्यों को परिगणित किया गया है।[18] 'प्रश्नव्याकरण' में उल्लिखित जुलाहे, सुनार व कारीगर वर्ग इस तरह के कार्यों में संलग्न लगते हैं।[19] उल्लेख के अनुसार नगर के कुशल शिल्पियों द्वारा निर्मित सुन्दर वस्तुओं का उपयोग राजा करते थे।[20] बदले में उनके द्वारा शिल्पियों को धन दिया जाता होगा। 'निशीथचूर्णि' में उल्लेख है, शिल्पी उन्हीं वस्तुओं के निर्माण की चेष्टा करते थे, जिनसे उन्हें पर्याप्त लाभ होता था।[21] अन्य आगमों में भी शिल्पी वर्ग अपने–अपने कार्यों के सरंक्षण एवं संवर्धन में सचेष्ट दिखाई पड़ते हैं। इसी कारण वे निगम, संघ, श्रेणी और निकाय जैसे संगठनों में संगठित थे।[22] 'जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति' में शिल्पियों की अट्ठारह श्रेणियों का उल्लेख है[23]– 1. कुम्हार, 2. पटइल्ल–पटेल (तंतुवाय रेशम बनाने वाले), 3. सुवण्णकार (स्वर्णकार), 4. सूवकारा (रसोइये), 5. गंधला (गन्धर्वगायक), 6. काश्यपक (नाई), 7. मालाकार, 8. कच्छकर, 9. तम्बोलिय (पनेरी), 10. चम्मरू (चर्मकार), 11. जंतीपीलग (तेल निकालने वाले), 12. गंधीय–ग्रंथिक (अंगोधे बनाने वाले), 13. छिपाय–छिंपक (कपड़े छापने वाले), 14. कांस्यक (बर्तन बनाने वाले–ठठेरे), 15. सीवक (दर्जी), 16. गोपाल, 17. भिल्ल–भील, 18. धीवर (मधुआरे)। 'प्रश्नव्याकरणसूत्र' में इनमें से कई श्रेणियों का उल्लेख एवं कईयों के कार्यों का उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त इसमें चित्र कर्म से सम्बन्धित अनेक कर्मों का उल्लेख है – काष्ठ पर, वस्त्र पर, मिट्टी आदि के लेप से, पाषाण पर, हाथीदाँत पर, चित्रलिखित, माला आदि की तरह गूँथकर, चपड़ी आदि भरकर अथवा संघात से अनेक प्रकार की मालाओं के रूप में पाँच वर्णों के प्रयोग से नाना प्रकार के आकार वाले चित्र बनाए जाते थे। ग्रन्थ में नट, नर्तक, रस्सी पर खेल दिखाने वाले (जल्ल), मल्लयुद्ध करने वाले, मुष्टि युद्ध करने वाले – मौष्टिक, विदूषक, कथावाचक, प्लवक, रास करने वाले, चित्रपट लेकर भिक्षा मांगने वाले, बाँस पर खेल दिखाने वाले, तूणा बजाने वाले आदि पेशेवर कलाकारों का भी उल्लेख हुआ है। इससे पता चलता है कि वे लोगों का मनोरंजन करके अपनी आजीविका चलाते थे।[24]

असिकर्म

असिकर्म का अभिप्राय तलवार, मुद्गर आदि अस्त्र धारण कर सेवा करने से है।[25] इसे सैनिकवृत्ति कहते हैं। पुलिस या सेना की नौकरी इस वृत्ति के अंतर्गत है। 'प्रश्नव्याकरणसूत्र' में नगररक्षक, कोतवाल, पुलिस, चौकीदार आदि[26] राज्यकर्मचारी इस वृत्ति के अतंर्गत आजीविकोपार्जन करते हुए पाए जाते हैं। 'आदिपुराण' में उल्लेख है कि शस्त्र धारण कर क्षत्रिय जाति के व्यक्ति इस वृत्ति से आजीविका चलाते थे। शस्त्रजीवी व्यक्तियों का समाज में वही स्थान था, जो शास्त्रजीवियों का था।[27] प्रश्नव्याकरण के व्याख्याकार ने राष्ट्रसेवा की दृष्टि से असिविद्या या युद्धविद्या को उपयोगी बताया है, किन्तु उसके दुरुपयोग होने पर उससे भयंकर परिणाम होने की बात की है।[28]

मसिकर्म

मसिकर्म का तात्पर्य लिपिककार्य से है। जो लिपिक या गणक का कार्य कर अपनी आजीविका चलाता है, वह मसिकर्म या मसिवृत्ति कहलाता है। 'कौटिल्य' के अर्थशास्त्र में इसी को 'लेखक' कहा गया है।[29]उसकी योग्यता वहाँ अमात्य की योग्यता वाला कहा गया है। ऐसे व्यक्ति लेखन कार्य कर राज्य शासन में सहायता करते

थे। 'प्रश्नव्याकरणसूत्र' में मषिजीवीवृत्ति पर आश्रित व्यक्तियों का अभाव दिखता है। राज्य कर्मचारियों में पुरोहित व अमात्य मषिजीवी व्यक्ति थे[30]। इसके अतिरिक्त वाद–विवाद को निपटाने वाले, अर्थशास्त्र, राजनीतिशस्त्र व धनुर्वेद आदि शास्त्रों के ज्ञाता, बहत्तर कलाओं एवं चौसठगुणों की शिक्षा देने वाले तथा वशीकरण आदि योग की शिक्षा देने वाले व व्यवहारशास्त्रोपदेश देने वाले व्यक्ति उस समय मसिकर्म वृत्ति पर आश्रित दिखते हैं।[31] तात्पर्य है कि ग्रन्थ–काल में मषिकर्म भी आजीविकोपार्जन का स्रोत था। जैन ग्रन्थों के अनुसार मसिकर्म की शिक्षा भगवान् ऋषभ ने ही सर्वप्रथम अपनी पुत्री ब्राह्मी को ब्राह्मी आदि अट्ठारह लिपियों का ज्ञान कराकर दी थी।

कृषिकर्म

सदियों से ही मनुष्य जीवन का आधार कृषिकर्म रहा है, मात्र अकर्म भूमिज मनुष्य ही इसके अपवाद थे। 'जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति' के अनुसार भरत चक्रवर्ती का गाथापतिरत्न कृषि–कर्म करवाता था।[32] 'उपासकदशा' एवं 'ज्ञाताधर्मकथा' में आए हुए अनेक गाथापति का कर्म कृषि पर ही आधारित था। 'उपासकदशा' के आनन्द गाथापति के पास पाँच सौ हल प्रमाण भूमि थी।[33] 'बृहत्कल्पभाष्यचूर्णि' में कृषि को जीवनदायिनी कहा गया है।[34] 'जातककथा' के अनुसार राजा शुदोद्धन हलकर्षणोत्सव बड़े धूम–धाम से मनाते थे।[35] 'पाराशरस्मृति' में कृषि कर्म को सबसे बड़ा धर्म बताया गया है।[36] प्रश्नव्याकरण में कृषिकर्म के महत्त्व के विषय में कोई उल्लेख नहीं है, किन्तु कृषि कर्म व उसपर आधारित व्यक्तियों का उल्लेख भरपूर मात्रा में हुआ है।

उल्लेख के अनुसार उस समय की भूमि विविध प्रकार की धान्य उपजाने वाली थी। ऐसी भूमि को 'खेत' कहा जाता था।[37] खेत के लिए क्षेत्र शब्द का प्रयोग प्रश्नव्याकरण में कई बार हुआ है। विशिष्ट प्रकार की भूमि को 'वल्लर' कहा जाता था। खेतों को जोतने के संकेत भी प्राप्त हैं। बिना जोती हुई भूमि के उल्लेख और उस पर घास–फूस से भरे रहने की चर्चा से लगता है, वैसी भूमि पशुओं के चारे के रूप में काम में आती होगी। धान्यों में शाली (धान), ब्रीहि–अनाज आदि और जौ को काटने के संकेत, उन्हें मल–मसल कर दाने को अलग करना एवं पवन से दानों को साफ कर भूसों से पृथक् करने की चर्चा एवं फिर कोठार में भरने का उल्लेख व्यवस्थित कृषिकर्म के साक्ष्य की सूचना देते हैं।[38] उल्लेख के अनुसार कृषि की मांग बढ़ने पर वन भूमि को कृषि भूमि में बदलने के लिए जंगलों को काटकर या जलाकर साफ कर लिया जाता था।[39]

श्रमिक वर्ग

कृषि कार्य में पर्याप्त मात्रा में श्रमिकों की आवश्यकता होती है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस कार्य में भृतक, भागीदार, कर्मकर, दास–दासी आदि संलग्न थे। भृतकों को वेतन के रूप में भोजन दिया जाता था। भागीदार बटाई पर खेती करते थे, जिन्हें 'भाइलग्ग' कहा जाता था। वे निश्चित शर्त के अनुसार काम करके उत्पादन का कुछ हिस्सा कृषिस्वामियों से प्राप्त करते थे।[40] अन्य श्रमिकों व भागीदारों द्वारा बटाई पर खेती करने का उल्लेख 'सूत्रकृतांग' एवं 'व्यवहारभाष्य' में भी प्राप्त होता है।[41] कर्मकर नियत समय तक काम करने वाले होते थे। दास–दासी राजाओं के घर या गाथापतियों के यहाँ स्थायी श्रमिक होते थे। इन्हें सम्पति का एक हिस्सा माना जाता था। इसके अतिरिक्त भी सेवक व श्रमिक होते थे, जिन्हें 'किंकर' कहा जाता था।[42] ये सभी श्रमिक क्या करूँ ? ऐसा पूछ कर काम करते थे। इन्हें वेतनादि देने का भी उल्लेख प्राप्त है।[43] कृषिश्रमिकों का उल्लेख निशीथचूर्णि, पिंडनिर्युक्ति एवं आवश्यकचूर्णि में भी हुआ है। 'निशीथचूर्णि' में कृषक द्वारा किराए पर भूमि लिए जाने का उल्लेख है।[44] 'पिंडनिर्युक्ति' के अनुसार केवल भोजन पर भी कर्मकरों को रखा जाता था।[45] 'आवश्यकनिर्युक्ति' में कृषक को अपने कार्यों में दक्ष होने की जानकारी मिलती है।[46]

कृषि उपकरण

'प्रश्नव्याकरणसूत्र'[47] में प्रयुक्त कृषि–उपकरण उस समय की व्यस्थित कृषि कर्म को दर्शाते हैं। वे हैं – युग–जूवा – हल जोतते समय बैलों के कंधे पर रखा जाने वाला उपकरण। इसको वर्तमान समय में 'जुआठ' कहते हैं। लांगल–हल, मतिक– जमीन जोतने के पश्चात् ढेला फोड़ने के लिए या भूमि को समतल बनाने के लिए काष्ठ निर्मित उपकरण। आज यह भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न नाम से प्रचलित है, इसे उत्तर भारत में 'हेंगा' भी कहा जाता है।'कुलिक'[48]–विशेष प्रकार का हल–बखर। सूर्प–सूप धान्यादि फटककर साफ करने का उपकरण। हल[49]–सामान्य हल।

निर्देशानुसार तीन प्रकार के हलों का प्रयोग होता था। हल, कुलिस, दन्तालग।[50] प्रश्नव्याकरण में तीन प्रकार के हलों में – नांगल, कुलिय और हल का जिक्र है। 'हल' जिसके आगे नुकीला लोहा (सीता) लगा रहता था, जो भूमि को तोड़ता चला जाता था, उसे 'हल' कहा जाता था। अन्य आगमों में सत्थ[51] खुर्पी जैसा उपकरण, असिड[52]–सम्भवतः हँसुआ, दाँति[53]–हँसुआ आदि का उल्लेख हुआ है। फसल कट जाने पर बैलों से मड़ाई करके फिर सूप से धान्य और भूसे को अलग किया जाता था,[54] तदनंतर कोठार में रख दिया जाता था।[55]

सिंचाई

'प्रश्नव्याकरणसूत्र' में सिंचाई के साधनों में पुष्करिणी, बावड़ी, क्यारी, कूप, सर, तालाब,[56] सरोवर, नदियाँ, छोटे–छोटे तालाब[57] दीर्घिका[58] (लम्बी–चौडी बावड़ी) गोलाकार बावड़ी, चौकोर बावड़ी, नहर[59] आदि का उल्लेख प्राप्त है। 'पउमचरियम्', जो लगभग पहली–दूसरी शती का ग्रन्थ है, उसके अनुसार नदियों पर बांध बांधे जाते थे, जिससे आवश्यकतानुसार पानी को रोकने व छोड़ने की व्यवस्था भी थी।[60] सम्भवतः उस समय कोई ऐसा यंत्र रहा होगा, जिससे पानी को नियंत्रित किया जाता था। लगभग 150 ई. के 'रुद्रदमन' के 'गिरनार शिलालेख' से मालूम चलता है कि मौर्य–कालीन सौराष्ट्र के प्रशासक 'पुष्यमित्र' ने सुदर्शन सरोवर का निर्माण करवाया था। इसके जल का उपयोग सिंचाई के लिए होता था।[61] कलिंग के राजा खारवेल द्वारा भी सिंचाई के लिए नहर बनवाने की चर्चा है।[62]

प्रमुख उपज

'प्रश्नव्याकरणसूत्र' में धान (शाली), ब्रीहि, जौ के अतिरिक्त अनाज का उल्लेख प्राप्त नहीं है, किन्तु जौ आदि शब्द का उल्लेख उस समय अन्य अनाजों के होने की बात कहता है। 'निशीथचूर्णि' में बाईस प्रकार के धान्यों का उल्लेख प्राप्त है, जिनमें यव, गोधूम (गेहूँ), शालि (धान), ब्रीहि, सीठी–क्रोदल (शालि विशेष), बाजरा, रालक, तिल, मूँग, माष, अलसी, चना, मसूर, णिकाव, इक्षु, तूवर, कलाय, धाणग, व मटर।[63] 'बृहत्कल्पभाष्य' में सत्तरह प्रकार के धान्यों की चर्चा है।[64] 'आचारांग' में दालों– मूँग, माष, मसूर, अरहर, चना, मटर, कुलत्थ का उल्लेख हुआ है।[65] इसी तरह औपपातिकसूत्र एवं अष्टाध्यायी में ईख की खेती का वर्णन है।[66] आचारांग एवं भगवती में विविध प्रकार के मसाले – पीपल, मिर्च, अदरक, हल्दी, जीरा, हींग, कपूर, लवंग, जायफल, प्याज और लहसुन, आदि के उल्लेख हैं।[67] इनमें प्रश्नव्याकरण में कपूर, लवंग, जायफल के अतिरिक्त मरुआ, एलारस, अगर, कुंकुम[68] आदि का उल्लेख, इनकी खेती होना बताते हैं। इसके अतिरिक्त कुल्माष–उड़द[69] तथा अट्ठारह प्रकार के शाक[70] तथा ईख, तैलीय भोज्य पदार्थों एवं तेलों के पेरने के यंत्र[71] के उल्लेख से विविध प्रकार के तेलों की खेती होने की सूचना मिलती है।

अन्य आगमों में भूकर्षण विधि[72] तथा खेतों की सुरक्षा के तौर–तरीकों का उल्लेख भी प्राप्त है।[73] कृषि–सम्बन्धी उपर्युक्त उल्लेख से उस समय की कृषि–कर्म व उस पर आश्रित व्यक्तियों एवं मुख्य अनाजों की जानकारी प्रभूत मात्रा में प्राप्त होती है।

पशुपालन

आर्थिक जीवन को उन्नति व समृद्ध बनाने में पशुओं का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। तत्कालीन समय में पशुओं को सम्पत्ति का अंग माना जाता था।[74] अत्यधिक पशु होना सम्पन्नता के सूचक थे। 'उपासकदशांग' के गाथापतियों के पास सहस्त्र पशु, जिनमें गोधन की अधिकता थी, होने का उल्लेख है।[75] 'प्रश्नव्याकरण' में घोड़े, हाथी, गाय, भैंस, बैल, ऊँट, गधा, बकरा, व गवेलक–विशिष्ट जाति के बकरे पालित पशु नजर आ रहे हैं।[76] इनकी हिंसा करके भी आजीविका चलाने वाली जातियों का उल्लेख मिलता है।[77] इनकी हिंसा चमड़ा, चर्बी, मांस, मेद, रक्त, दाँत, हड्डी, सींग, पूँछ आदि के लिए की जाती थी।[78] इनकी खरीद–बिक्री करने एवं पकाने योग्य पशुओं को पकाकर स्वजन को देने का संकेत प्राप्त होता है।[79] गाय आदि पशुओं के कर्णच्छेदन करने, शरीर पर निशान बनाने, बधिया करने, भैंस आदि का अधिक दूध दूहने के लिए धमण–शरीर में हवा भरने, जौं आदि खिलाने, बछड़े को दूसरी गाय के साथ लगाकर गाय को धोखा देने एवं गाड़ी आदि में जोतने का उल्लेख प्राप्त है।[80] मृषावादी गाय–बैलों के निमित्त झूठ भी बोलते थे।[81] बकरियों का उपयोग सिंह आदि वन्य जीवों को पकड़ने में किया जाता था।[82] पशुओं की मज्जा का प्रयोग वस्त्र रंगने में होता था।[83] उत्तम जाति के अश्व की पहचान गुदा भाग को मल से निलृप्त होने एवं सिंह के सदृश्य कमर से की जाती थी।[84] बैलों से हल चलाने, रेहट चलाने एवं गाड़ी खींचने की सूचना 'दशवैकालिक' में प्राप्त होती है।[85] भारी काम करने वाले बैलों को स्वामी द्वारा अच्छा चारा दिया जाता था।[86] कृषि व यातायात के लिए बैलों को बधिया किया जाता था।[87] गाय, भैंस, बकरी, भेड़ और ऊँटनी दूध देने वाले पशु थे।[88] इनसे दूध, दही, नवनीत, घृत, व तक्र की भी प्राप्ति होती थी।

अन्य आगमों में भी पशुपालन व उससे आजीविका की प्राप्ति के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है। 'आचारांग' में ऊँटों के बालों से वस्त्र बनाये जाने के संकेत हैं।[89] 'विपाकसूत्र' में छगलपुर के 'छण्णिक' नामक छागलिक–कसाई मांस प्राप्ति के लिए बकरों, भेड़ों, नीलगायों, वृषभों, शशकों, शूकरों, सिंहों, व हरिणों आदि हजार–हजार पशुओं को पालता था, उनको अच्छा चारा खिलाता था, देख–रेख के लिए वेतन देकर कई नौकर रखता था। ये नौकर पशुओं का वध करके मांस को राजमार्ग पर बेचते थे।[90] नगरों के बाहर सूनेगृह में भी कच्चा मांस बेचा जाता था।[91] 'बृहत्कल्पभाष्य' का एक ग्वाला 'सरवड़ी' मेला में अथवा भोज में ले जाने एवं अधिक मूल्य प्राप्त करने के लिए दस दिन पूर्व से गाय का दोहन बन्द कर दिया था।[92] यह परम्परा आज भी है, किन्तु इतने दिन तक दूध रोकना, सम्भव प्रतीत नहीं होता।

वाणिज्य–व्यापार

प्रश्नव्याकरण में साधुओं के आहार सम्बन्धी सोलह उद्गम दोषों में क्रीत एवं प्रामित्य अर्थात् खरीदकर लाया हुआ एवं उधार लाया हुआ आहार का निषेध[93] तत्कालीन बाजार की सूचना देता है, जहाँ वस्तुओं की खरीद–बिक्री नकद राशि देकर एवं उधार भी होते थे। एक स्थल पर गृहस्थों द्वारा दुकान बनाने का उल्लेख है।[94] अन्यत्र छल करने वाले बनिया, खोटा नाप–तौल करने वाले (व्यवसायी) तथा नकली सिक्कों से आजीविका चलाने वाले वाणिज्य–परायण व्यक्तियों का उल्लेख वाणिज्य कर्म और उसमें ईमानदारी का अभाव होने की जानकारी उपलब्ध कराते हैं।[95] छोटे, मध्यम और बड़े नौका व्यापारियों[96], सामुद्रिक व्यापार में रत नौका–वणिकों व जहाजी व्यापारियों का उल्लेख उस समय बड़े पैमाने पर सामुद्रिक व्यापारियों के होने का वर्णन करते हैं।[97] ऐसे व्यापारियों का उस समय समुद्री डकैतों द्वारा सामान भी लूट लिया जाता था।[98] वाणिज्य–व्यापार करने वाले लोग जहाँ बहुतयात रूप में रहते थे, वैसी बस्तियों को 'निगम' कहा जाता था।[99] जहाँ देश–देशान्तर से लोग माल खरीदने व बेचने आते थे अथवा रत्न आदि का व्यापार होता था, वैसे स्थान 'पत्तन' कहे जाते थे।[100] कुछ खनिज वाली बस्तियाँ होती थीं, जो 'आकर' कहलाती थी।[101] यहाँ विविध प्रकार की धातुएँ – सोना, चाँदी आदि खानों से निकलती होंगी, क्योंकि अनेक प्रकार के आभूषणों का उल्लेख हुआ है। 'निगम' व 'पत्तन' आदि बस्तियों का उल्लेख व्यापार–वाणिज्य के पक्ष को तो उजागर करता ही है साथ ही साथ उस समय बृहत्तर भारत से व्यापारिक संबंध स्थापित होने की सूचना देता है।

उद्योग – धन्धे

उद्योग के लिए कच्चे माल की आवश्यकता पड़ती हैं, उसकी पूर्ति वन सम्पदा, खनिज सम्पदा, कृषि व पशुधन से होती थी। कृषि से वस्त्र, खाँड, तेल उद्योग

चलते थे। खनिज सम्पदा से धातु उद्योग उन्नति पर था। वस्त्र उद्योग, काष्ठ उद्योग, चर्म उद्योग तथा वास्तु उद्योग के लिए कच्चा माल वनों से आ जाता था।[102] यातायात के साधन उस समय पशुधन थे। 'प्रश्नव्याकरणसूत्र' में निम्नलिखित वस्त्र उद्योगों पर प्रकाश पड़ता है :–

सूती वस्त्र

ग्रन्थ में कपास निर्मित वस्त्रों का उल्लेख हुआ है, जिसे 'क्षौमयुगल' कहा जाता था। वस्त्रों में क्षौमयुगल की प्रधानता थी।[103] इससे पता चलता है, कपास की खेती उन दिनों में प्रचुर मात्रा में थी और उससे वस्त्र का निर्माण किया जाता था। बृहत्कल्पभाष्य जिसका नामोल्लेख 'प्रश्नव्याकरणसूत्र' में भी हुआ है, उसमें कपास से सूतीवस्त्र बनाने की विधि पर प्रकाश डाला गया है।[104] प्रश्नव्याकरण में 'दुकूलवस्त्र' का उल्लेख भी है।[105]दुकूल नामक वृक्ष की छाल से यह वस्त्र तैयार किया जाता था।[106]

रेशमी वस्त्र

कृमि से रेशमी वस्त्र का निर्माण किया जाता है, इसके अतिरिक्त वृक्षों की छाल से भी यह वस्त्र बनाया जाता है। बलदेव एवं वासुदेव के वस्त्र नीले व पीत वर्ण के रेशमी वस्त्र थे।[107]'आचारांग' में रेशमी वस्त्र को 'भंगिम' कहा गया है।[108] 'अनुयोगद्वार' में अंडो से निर्मित वस्त्रों को अंडज, कीड़ों की लार से निर्मित वस्त्र को कीटज कहा गया है।[109]

ऊनी वस्त्र

ऊनी वस्त्रों का निर्माण मुख्य रूप से पशुओं के बाल से होता है। ग्रंथ में बालों के लिए पशुओं की हिंसा करने का उल्लेख ऊनी वस्त्र के साथ चर्मवस्त्र पर भी प्रकाश डालते हैं। 'प्रश्नव्याकरणसूत्र' में कृमि से बने ऊनी वस्त्रों में कृमिरागरज कम्बल का उल्लेख हुआ है, जो सभी कम्बलों में प्रधान है।[110] इसके अतिरिक्त चीन देश से वस्त्रों का आयात किया जाता था, जिसे 'चीनांशुक' कहा जाता था।[111]

धातु उद्योग

ग्रन्थ में अनेकों बार स्वर्ण–चाँदी आदि अमूल्य धातुओं का उल्लेख व उससे निर्मित विविध आभूषणों की चर्चा तथा खानों वाली बस्ती 'आकर' का वर्णन, ये सभी उस समय धातु उद्योग के होने की ओर संकेत करते हैं।

वास्तु उद्योग

'प्रश्नव्याकरणसूत्र' में उल्लिखित तिराहे–तिमुहानी, चौमुहानी आदि तथा परकोटा, द्वार, गोपुर, अंटारी, चरिका, प्रासाद, विकल्प–विशेष प्रकार का प्रासाद, भवन, गृह, लयन, देवकूल, चित्र, सभा, प्याऊ, देवस्थान, आवसथ, तलघर, तोरण, चैत्य आदि[112] के उल्लेख उस समय के वास्तु–निर्माण की उन्नति की सूचना देते हैं।

तेल उद्योग

'प्रश्नव्याकरण' में तेल निकालने के यंत्र का उल्लेख हुआ है[113] जो तेल–उद्योग की जानकारी करा रहा है। इसके अतिरिक्त शृंगार प्रियता एवं विलास प्रियता की प्रचुर सामग्री का वर्णन[114] प्रसाधनउद्योग तथा काष्ठनिर्मित हल, जुआ, पाटा[115] काष्ठ उद्योग एवं ईख से रस निकालने का यंत्र 'उच्छू दुज्जंतु'[116] से खांड–उद्योग की उपलब्धता प्रतीत होती है।

निष्कर्ष

जैन आगम साहित्य में अर्थोपार्जन के स्रोतों पर गहराई से चिंतन, मनन हुए हैं। यह वर्तमान जीवन में न सिर्फ प्रासंगिक है बल्कि व्यवहार में लाना आधुनिक परिप्रेक्ष्य में एक समाधान है ।

Conclusion

Jain age-old literature contemplates deep meditation on earning, this is not only relevant in current life, rather in practice is a solution in modern perspective.

सन्दर्भ सूची

1. *'अर्थमूलौ हि धर्मकामौ', अर्थशास्त्र (कौटिल्य) 1/7/3*
2. *नीतिवाक्यामृतम्, (सोमदेव सूरि), 2/16/17*
3. *यः कामार्थावुपहत्य धर्ममेवोपास्ते, स पक्वं क्षेत्रं परित्यज्योषरं कृषति। वही, 1/48*
4. *यतः सर्वप्रयोजनःसिद्धिः सोऽर्थः, वही, 2.1*
5. *पउमचरियं, विमल सूरि 35/66–67*
6. *कुवलयमालाकहा, पृष्ठ 57*
7. *वाल्मीकिरामायण, 6/83/21, 39*
8. *महाभारत, शांतिपर्व, 12.8.24*
9. *बृहस्पतिस्मृति, 6.24*
10. *उद्धृत, प्राचीन जैन साहित्य में आर्थिक जीवन (डॉ. कमल जैन), पृष्ठ 12*
11. *असिर्मषिः कृषिर्विद्या वाणिज्यं शिल्पमेव,*
12. *कर्माणीमानि षोढ़ास्यु प्रजाजीवन हेतवा।। आदिपुराण (जिणसेन), 16.179*
13. *प्रश्नव्याकरणसूत्र96/149 (ब्या.सं.)*
14. *''सिप्पसयं सिक्खए', वही, 96/148*
15. *''बहुजणो कलाओ य बावत्तरिं सुणिउणाओ लेहाइयाओ सउण–*
16. *रुयावसाणाओ गणियप्पहाणाओ, चउसट्ठिं च महिलागुणे'। वही, 96/148*
17. *(क) प्र. व्या. व्याख्या पृष्ठ 151–154 (ख) ज्ञाताधर्मकथा, सूत्र–7, पृष्ठ 48,*
18. *ग) समवायांग, 72, (घ). राजप्रश्नीय, पत्र 340*
19. *'सिप्पसेवं, प्र. व्या., 96/149*
20. *'शिल्पंस्यात्कर कौशलम्', उद्धृत आदि पुराण में प्रतिपादित भारत (डॉ. नेमिचन्द शास्त्री), पृष्ठ 345*
21. *प्र. व्या. 46/53*
22. *वही, 4.4; उद्धृत, प्राचीन साहित्य में आर्थिक जीवन एक अध्ययन, पृष्ठ 44*
23. *निशीथचूर्णी, भाग–3/4419*
24. *(क) ज्ञाताधर्मकथा, 8/118, (ख) बृहद्कल्पभाष्य 2/1091,*
25. *आवश्यकचूर्णि 21/पृष्ठ 81*
26. *जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, 3/83*
27. *प्र.व्या. 166/256 (ब्या.सं.)*
28. *आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृष्ठ 338*
29. *प्र. व्या. 46–53, 54–72*
30. *आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृष्ठ 338*
31. *प्र. व्या. पृष्ठ 489 (आ.सं.)*
32. *उद्धृत आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृष्ठ 338*

33. प्र. व्या., 87 पृष्ठ 127 (ब्या.सं.)
34. वही, 96/149
35. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति 2.22
36. उपासकदशांग 1–28
37. बृहत्कल्पभाष्य, भाग 4/3647
38. जातक कथा, भाग 1/207 भगदंत कौशल्यायन
39. पराशरस्मृति 5.184–185
40. प्र. व्या. 86/123 (ब्या.सं.)
41. 38–39–40. वही, 56/74
42. (क) सूत्रकृतांग, 2/7/3, (ख) व्यवहारभाष्य, 6/163–164
43. प्र. व्या. सूत्र, 56/74
44. (क) वही, 56/74, (ख) उपासकदशा 1/32
45. नशीथचूर्णि, भाग 3/गाथा 3499
46. पिंडंनिर्युक्ति, गाथा 384
47. आवश्यकचूर्णि, भाग 2 पृष्ठ 133
48. प्र. व्या., 17/22, 41/46
49. वही, 17/22
50. वही, 31/37
51. निशीथचूर्णि, भाग 1 गाथा 60,
52. सूत्रकृतांग, 2/2/698
53. भगवतीसूत्र, 14/7/7
54. ज्ञाताधर्मकथा, 7/15
55. (क) प्र. व्या., 56/74, (ख) निशीथचूर्णि, भाग–1 गाथा 293
56. प्र. व्या., 56/74
57. वही, 13/21
58. वही, 86/123
59. वही, 95/147
60. वही, 166/256
61. पउमचरियं, 10/35, 51
62. प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, 2, पृष्ठ 43 (ए के नारायण)
63. हाथीगुफ्फा अभिलेख, वही, पृष्ठ 67
64. निशीथचूर्णि, भाग–2 गाथा 1029, 1030
65. बृहत्कल्पभाष्य, भाग–2 गाथा 828
66. आचारांग 2/10/8
67. (क) औपपातिकसूत्र 1, (ख) अष्टाध्यायी (पाणिनी) 8.4.5
68. क) आचारांग 2/1/8 45, (ख) भगवती 7.3.5
69. प्र. व्या. 167/257
70. वही, 157/243
71. वही, 168/258
72. वही, 56/74
73. 'फोडीकम्म, उपासकदशा, 1/51
74. (क) बृहत्कल्पभाष्य, 2/1156, (ख) ज्ञाताधर्मकथा 7/12
75. इत्तोपरिग्गहो
हय–गय–गो–महिस–उट्ठ–अय–गवेलग। प्र. व्या. 93/141
76. उपासकदशांग 1/12, 2/4
77. प्र. व्या., 93/141, 6/13 (ब्या.सं.)
78. वही, 21/26
79. वही, 11/16
80. वही, 56/74
81. वही, 54/72
82. वही, 52 पृष्ठ 69
83. वही, सूत्र 19 पृष्ठ 25
84. वही, 11/16
85. वही, 88/128
86. दशवैकालिक, 7/24, 26
87. बृहत्कल्पभाष्य, 2/1119
88. (क) प्र. व्या. सूत्र 54/72 (ख) उपासकदशा 1/38
89. निशीथचूर्णि, भाग 2 गाथा, 1593
90. आचारांग, 2/ 5/1/ 141
91. विपाकसूत्र, 4/6–7
92. निरयावलिया, 1/30
93. बृहत्कल्पभाष्य, भाग–2 गाथा 1591
94. प्र. व्या., 110/174 (ब्या.सं.)
95. वही, 135/207
96. वही, 46/53
97. वही, 57/75
98. 97– 98वही, 67/91–92
99. वही, 68/93
100. वही, 93/141
101. वही, 68/93
102. प्राचीन जैन साहित्य में आर्थिक जीवन, पृष्ठ 78
103. 'वत्थाणं चेव खोमजुयलं। प्र. व्या. 142/217 (ब्या.सं.)
104. बृहत्कल्पभाष्य, भाग–3 गाथा 2987
105. दुगुल्लवरचीणपट्टकोसेज्ज'। प्र. व्या., 85/118 (ब्या.सं.)
106. निशीथचूर्णि, भाग–2 पृष्ठ 399
107. प्र. व्या., 86/123 (ब्या.सं.)
108. आचारांग, 2/5/1/145
109. (क) अनुयोगद्वार, 28..–38, (ख) 'बेइंदिय बहवे वत्थोहर परिमंडणणट्ठा, प्र. व्या. 11/16 (ब्या.सं.)
110. प्र. व्या. 142/217
111. वही, 85/118
112. वही, 13/21, 135/207, 166/256
113. जंतभंडाइयस्स' पीलिजजंतु य तिला। वही, 56/74
114. वही, 150/225
115. वही, 17/22
116. वही, 56/74